श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

श्रीमद्भागवत रसिक कुटुंब

श्रीमद्भगवद्गीता अथैकादशो अध्याय

पार्थ सारथी ने समझाया धर्म -कर्म का ज्ञान,
मानव जीवन सफल बना ले गीता अमृत मान।

नारायणं(न्) नमस्कृत्य, नरं(ञ्) चैव नरोत्तमम्।

देवीं(म्) सरस्वतीं(वँ) व्यासं(न्), ततो जयमुदीरयेत्

अन्तर्यामी नारायण स्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण, (उनके नित्य सखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीला प्रकट करनेवाली) भगवती सरस्वती और (उन लीलाओं का संकलन करनेवाले) महर्षि वेदव्यास को नमस्कार करके जय के साधन वेद-पुराणों का पाठ करना चाहिये।

नामसङ्कीर्तनं(यँ) यस्य, सर्वपापप्रणाशनम्।

प्रणामो दुःखशमनस्, तं(न्) नमामि हरिं(म्) परम्

जिन भगवान के नामों का संकीर्तन सारे पापों को सर्वथा नष्ट कर देता है और जिन भगवान के चरणों में आत्मसमर्पण, उनके चरणों में प्रणति सर्वदा के लिए सब प्रकार के दुःखों को शांत कर देती है, उन्हीं परम -तत्वस्वरूप श्रीहरि को मैं नमस्कार करता हूं।

श्रीमद्भगवद्गीतायां(न्)

अथैकादशोऽध्यायः

अर्जुन उवाच

मदनुग्रहाय परमं(ङ्), गुह्यमध्यात्मसञ्ज्ञितम् ।

यत्त्वयोक्तं(वँ) वचस्तेन, मोहोऽयं(वँ) विगतो मम ॥ 1 ॥

अर्जुन बोले- मुझ पर अनुग्रह करने के लिए आपने जो परम गोपनीय अध्यात्म विषयक वचन अर्थात उपदेश कहा, उससे मेरा यह अज्ञान नष्ट हो गया है ।

भवाप्ययौ हि भूतानां(म्), श्रुतौ विस्तरशो मया ।

त्वत्तः(ख्) कमलपत्राक्ष, माहात्म्यमपि चाव्ययम् ॥ 2 ॥

क्योंकि हे कमलनेत्र! मैंने आपसे भूतों की उत्पत्ति और प्रलय विस्तारपूर्वक सुने हैं तथा आपकी अविनाशी महिमा भी सुनी है ।

एवमेतद्यथात्थ त्व- मात्मानं(म्) परमेश्वर ।

द्रष्टुमिच्छामि ते रूप- मैश्वरं(म्) पुरुषोत्तम ॥ 3 ॥

हे परमेश्वर! आप अपने को जैसा कहते हैं, यह ठीक ऐसा ही है, परन्तु हे पुरुषोत्तम! आपके ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज से युक्त ऐश्वर्य-रूप को मैं प्रत्यक्ष देखना चाहता हूँ ।

मन्यसे यदि तच्छक्यं(म्), मया द्रष्टुमिति प्रभो ।

योगेश्वर ततो मे त्वं(न्), दर्शयात्मानमव्ययम् ॥ 4 ॥

हे प्रभो! यदि मेरे द्वारा आपका वह रूप देखा जाना शक्य है- ऐसा आप मानते हैं, तो हे योगेश्वर! उस अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराइए ।

श्रीभगवानुवाच

पश्य मे पार्थ रूपाणि, शतशोऽथ सहस्रशः ।

नानाविधानि दिव्यानि, नानावर्णाकृतीनि च ॥ 5 ॥

श्री भगवान बोले- हे पार्थ! अब तू मेरे सैकड़ों-हजारों नाना प्रकार के और नाना वर्ण तथा नाना आकृतिवाले अलौकिक रूपों को देख ।

पश्यादित्यान्वसून्रुद्रा- नश्विनौ मरुतस्तथा ।

बहून्यदृष्टपूर्वाणि, पश्याश्चर्याणि भारत ॥ 6 ॥

हे भरतवंशी अर्जुन! तू मुझमें आदित्यों को अर्थात अदिति के द्वादश पुत्रों को, आठ वसुओं को, एकादश रुद्रों को, दोनों अश्विनीकुमारों को और उनचास मरुद्गणों को देख तथा और भी बहुत से पहले न देखे हुए आश्चर्यमय रूपों को देख ।

इहैकस्थं(ञ्) जगत्कृत्स्नं(म्), पश्याद्य सचराचरम् ।

मम देहे गुडाकेश, यच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ 7 ॥

हे अर्जुन! अब इस मेरे शरीर में एक जगह स्थित चराचर सहित सम्पूर्ण जगत को देख तथा और भी जो कुछ देखना चाहता हो सो देख ।

न तु मां(म्) शक्यसे द्रष्टु- मनेनैव स्वचक्षुषा ।

दिव्यं(न्) ददामि ते चक्षुः(फ्), पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ 8 ॥

परन्तु मुझको तू इन अपने प्राकृत नेत्रों द्वारा देखने में निःसंदेह समर्थ नहीं है, इसी से मैं तुझे दिव्य अर्थात् अलौकिक चक्षु देता हूँ, इससे तू मेरी ईश्वरीय योग शक्ति को देख ।

सञ्जय उवाच

एवमुक्त्वा ततो राजन्- महायोगेश्वरो हरिः ।

दर्शयामास पार्थाय, परमं(म्) रूपमैश्वरम् ॥ 9 ॥

संजय बोले- हे राजन्! महायोगेश्वर और सब पापों के नाश करने वाले भगवान ने इस प्रकार कहकर उसके पश्चात् अर्जुन को परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्यस्वरूप दिखलाया ।

अनेकवक्त्रनयन- मनेकाद्भुतदर्शनम् ।

अनेकदिव्याभरणं(न्), दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ 10 ॥

अर्जुन ने उस विश्वरूप में अनेक मुख और नेत्रों से युक्त, अनेक अद्भुत दर्शनों वाले, बहुत से दिव्य भूषणों से युक्त और बहुत से दिव्य शस्त्रों को धारण किए हुए देखा ।

दिव्यमाल्याम्बरधरं(न्), दिव्यगन्धानुलेपनम् ।

सर्वाश्चर्यमयं(न्) देव- मनन्तं(वँ) विश्वतोमुखम् ॥ 11 ॥

दिव्य गंध का सारे शरीर में लेप किए हुए, सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त, सीमारहित और सब ओर मुख किए हुए विराट्स्वरूप परमदेव परमेश्वर को अर्जुन ने देखा ।

दिवि सूर्यसहस्रस्य, भवेद्युगपदुत्थिता ।

यदि भाः(स्) सदृशी सा स्याद्- भासस्तस्य महात्मनः ॥ 12 ॥

आकाश में हजार सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न जो प्रकाश हो, वह भी उस विश्व रूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश कदाचित् ही हो ।

तत्रैकस्थं(ञ्) जगत्कृत्स्नं(म्), प्रविभक्तमनेकधा ।

अपश्यद्देवदेवस्य, शरीरे पाण्डवस्तदा ॥ 13 ॥

पाण्डुपुत्र अर्जुन ने उस समय अनेक प्रकार से विभक्त अर्थात पृथक-पृथक सम्पूर्ण जगत को देवों के देव श्रीकृष्ण भगवान के उस शरीर में एक जगह स्थित देखा ।

ततः(स्) स विस्मयाविष्टो, हृष्टरोमा धनञ्जयः ।

प्रणम्य शिरसा देवं(ङ्), कृताञ्जलिरभाषत ॥ 14 ॥

उसके अनंतर आश्चर्य से चकित और पुलकित शरीर अर्जुन प्रकाशमय विश्वरूप परमात्मा को श्रद्धा-भक्ति सहित सिर से प्रणाम करके हाथ जोड़कर ।

अर्जुन उवाच

पश्यामि देवां(म्)स्तव देव देहे,

सर्वां(म्)स्तथा भूतविशेषसङ्घान् ।

ब्रह्माणमीशं(ङ्) कमलासनस्थ-

मृषीं(म्)श्च सर्वानुरगां(म्)श्च दिव्यान् ॥ 15 ॥

अर्जुन बोले- हे देव! मैं आपके शरीर में सम्पूर्ण देवों को तथा अनेक भूतों के समुदायों को, कमल के आसन पर विराजित ब्रह्मा को, महादेव को और सम्पूर्ण ऋषियों को तथा दिव्य सर्पों को देखता हूँ ।

अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्रं(म्)-

पश्यामि त्वां(म्) सर्वतोऽनन्तरूपम् ।

नान्तं(न्) न मध्यं(न्) न पुनस्तवादिं(म्)-

पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप ॥ 16 ॥

हे सम्पूर्ण विश्व के स्वामिन्! आपको अनेक भुजा, पेट, मुख और नेत्रों से युक्त तथा सब ओर से अनन्त रूपों वाला देखता हूँ। हे विश्वरूप! मैं आपके न अन्त को देखता हूँ, न मध्य को और न आदि को ही ।

किरीटिनं(ङ्) गदिनं(ञ्) चक्रिणं(ञ्) च,

तेजोराशिं(म्) सर्वतो दीप्तिमन्तम् ।

पश्यामि त्वां(न्) दुर्निरीक्ष्यं(म्) समन्ताद्-

दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ 17 ॥

आपको मैं मुकुटयुक्त, गदायुक्त और चक्रयुक्त तथा सब ओर से प्रकाशमान तेज के पुंज, प्रज्वलित अग्नि और सूर्य के सदृश ज्योतियुक्त, कठिनता से देखे जाने योग्य और सब ओर से अप्रमेयस्वरूप देखता हूँ ।

त्वमक्षरं(म्) परमं(वँ) वेदितव्यं(न्)-

त्वमस्य विश्वस्य परं(न्) निधानम् ।

त्वमव्ययः(श्) शाश्वतधर्मगोप्ता,

सनातनस्त्वं(म्) पुरुषो मतो मे ॥ 18 ॥

आप ही जानने योग्य परम अक्षर अर्थात परब्रह्म परमात्मा हैं। आप ही इस जगत के परम आश्रय हैं, आप ही अनादि धर्म के रक्षक हैं और आप ही अविनाशी सनातन पुरुष हैं। ऐसा मेरा मत है ।

अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्य-

मनन्तबाहुं(म्) शशिसूर्यनेत्रम् ।

पश्यामि त्वां(न्) दीप्तहुताशवक्त्रं(म्)-

स्वतेजसा विश्वमिदं(न्) तपन्तम् ॥ 19 ॥

आपको आदि, अंत और मध्य से रहित, अनन्त सामर्थ्य से युक्त, अनन्त भुजावाले, चन्द्र-सूर्य रूप नेत्रों वाले, प्रज्वलित अग्निरूप मुखवाले और अपने तेज से इस जगत को संतृप्त करते हुए देखता हूँ ।

द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं(म्) हि,

व्याप्तं(न्) त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः।

दृष्ट्वाद्भुतं(म्) रूपमुग्रं(न्) तवेदं(लँ)-

लोकत्रयं(म्) प्रव्यथितं(म्) महात्मन् ॥ 20 ॥

हे महात्मन्! यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का सम्पूर्ण आकाश तथा सब दिशाएँ एक आपसे ही परिपूर्ण हैं तथा आपके इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक अतिव्यथा को प्राप्त हो रहे हैं

अमी हि त्वां(म्) सुरसङ्घा विशन्ति,

केचिद्भीताः(फ्) प्राञ्जलयो गृणन्ति।

स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः(स्),

स्तुवन्ति त्वां(म्) स्तुतिभिः(फ्) पुष्कलाभिः ॥ 21 ॥

वे ही देवताओं के समूह आप में प्रवेश करते हैं और कुछ भयभीत होकर हाथ जोड़े आपके नाम और गुणों का उच्चारण करते हैं तथा महर्षि और सिद्धों के समुदाय कल्याण हो ऐसा कहकर उत्तम-उत्तम स्तोत्रों द्वारा आपकी स्तुति करते हैं ।

रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या-

विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।

गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा-

वीक्षन्ते त्वां(वँ) विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ 22 ॥

जो ग्यारह रुद्र और बारह आदित्य तथा आठ वसु, साध्यगण, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार तथा मरुद्गण और पितरों का समुदाय तथा गंधर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धों के समुदाय हैं- वे सब ही विस्मित होकर आपको देखते हैं ।

रूपं(म्) महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं(म्)-

महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।

बहूदरं(म्) बहुदं(म्)ष्ट्राकरालं(न्)-

दृष्ट्वा लोकाः(फ्) प्रव्यथितास्तथाहम् ॥ 23 ॥

हे महाबाहो! आपके बहुत मुख और नेत्रों वाले, बहुत हाथ, जंघा और पैरों वाले, बहुत उदरों वाले और बहुत-सी दाढ़ों के कारण अत्यन्त विकराल महान रूप को देखकर सब लोग व्याकुल हो रहे हैं तथा मैं भी व्याकुल हो रहा हूँ ।

नभः(स्)स्पृशं(न्) दीप्तमनेकवर्णं(वँ)-

व्यात्ताननं(न्) दीप्तविशालनेत्रम् ।

दृष्ट्वा हिं त्वां(म्) प्रव्यथितान्तरात्मा,

धृतिं(न्) न विन्दामि शमं(ञ्) च विष्णो ॥ 24 ॥

क्योंकि हे विष्णो! आकाश को स्पर्श करने वाले, दैदीप्यमान, अनेक वर्णों से युक्त तथा फैलाए हुए मुख और प्रकाशमान विशाल नेत्रों से युक्त आपको देखकर भयभीत अन्तःकरण वाला मैं धीरज और शान्ति नहीं पाता हूँ ।

दं(म्)ष्ट्राकरालानि च ते मुखानि,

दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ।

दिशो न जाने न लभे च शर्म,

प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ 25 ॥

दाढ़ों के कारण विकराल और प्रलयकाल की अग्नि के समान प्रज्वलित आपके मुखों को देखकर मैं दिशाओं को नहीं जानता हूँ और सुख भी नहीं पाता हूँ। इसलिए हे देवेश! हे जगन्निवास! आप प्रसन्न हों ।

अमी च त्वां(न्) धृतराष्ट्रस्य पुत्राः(स्),

सर्वे सहैवावनिपालसङ्घैः ।

भीष्मो द्रोणः(स्) सूतपुत्रस्तथासौ,

सहास्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ 26 ॥

धृतराष्ट्र के सारे पुत्र अपने समस्त सहायक राजाओं सहित तथा भीष्म, द्रोण, कर्ण एवं हमारे प्रमुख योद्धा भी आपके विकराल मुख में प्रवेश कर रहे हैं।

वक्त्राणि ते त्वरमाणा विशन्ति,

दं(म्)ष्ट्राकरालानि भयानकानि ।

केचिद्विलग्ना दशनान्तरेषु,

सन्दृश्यन्ते चूर्णितैरुत्तमाङ्गैः ॥ 27 ॥

उनमें से कुछ के शिरों को तो मैं आपके दाँतों के बीच चूर्णित हुआ देख रहा हूँ।

यथा नदीनां(म्) बहवोऽम्बुवेगाः(स्),

समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति ।

तथा तवामी नरलोकवीरा-

विशन्ति वक्त्राण्यभिविज्वलन्ति ॥ 28 ॥

जैसे नदियों के बहुत-से जल के प्रवाह स्वाभाविक ही समुद्र के ही सम्मुख दौड़ते हैं अर्थात समुद्र में प्रवेश करते हैं, वैसे ही वे नरलोक के वीर भी आपके प्रज्वलित मुखों में प्रवेश कर रहे हैं ।

यथा प्रदीप्तं(ञ्) ज्वलनं(म्) पतं(ङ्)गा-

विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः ।

तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्-

तवापि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥ 29 ॥

जैसे पतंग मोहवश नष्ट होने के लिए प्रज्वलित अग्नि में अतिवेग से दौड़ते हुए प्रवेश करते हैं, वैसे ही ये सब लोग भी अपने नाश के लिए आपके मुखों में अतिवेग से दौड़ते हुए प्रवेश कर रहे हैं ।

लेलिह्यसे ग्रसमानः(स्) समन्ताल्-

लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।

तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं(म्)-

भासस्तवोग्राः(फ्) प्रतपन्ति विष्णो ॥ 30 ॥

आप उन सम्पूर्ण लोकों को प्रज्वलित मुखों द्वारा ग्रास करते हुए सब ओर से बार-बार चाट रहे हैं। हे विष्णो! आपका उग्र प्रकाश सम्पूर्ण जगत को तेज द्वारा परिपूर्ण करके तपा रहा है ।

आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो-

नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।

विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं(न्)-

न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ 31 ॥

मुझे बतलाइए कि आप उग्ररूप वाले कौन हैं? हे देवों में श्रेष्ठ! आपको नमस्कार हो। आप प्रसन्न होइए। आदि पुरुष आपको मैं विशेष रूप से जानना चाहता हूँ क्योंकि मैं आपकी प्रवृत्ति को नहीं जानता ।

श्रीभगवानुवाच

कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो-

लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।

ऋतेऽपि त्वां(न्) न भविष्यन्ति सर्वे,

येऽवस्थिताः(फ्) प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ 32 ॥

श्री भगवान बोले- मैं लोकों का नाश करने वाला बढ़ा हुआ महाकाल हूँ। इस समय इन लोकों को नष्ट करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ। इसलिए जो प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित योद्धा लोग हैं, वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे अर्थात तेरे युद्ध न करने पर भी इन सबका नाश हो जाएगा ।

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व,

जित्वा शत्रून्भुङ्क्ष्व राज्यं(म्) समृद्धम् ।

मयैवैते निहताः(फ्) पूर्वमेव,

निमित्तमात्रं(म्) भव सव्यसाचिन् ॥ 33 ॥

अतएव तू उठ! यश प्राप्त कर और शत्रुओं को जीतकर धन-धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग। ये सब शूरवीर पहले ही से मेरे ही द्वारा मारे हुए हैं। हे सव्यसाचिन! तू तो केवल निमित्तमात्र बन जा।

द्रोणं(ञ्) च भीष्मं(ञ्) च जयद्रथं(ञ्) च,

कर्णं(न्) तथान्यानपि योधवीरान् ।

मया हतां(म्)स्त्वं(ञ्) जहि मा व्यथिष्ठा-

युध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥ 34 ॥

द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह तथा जयद्रथ और कर्ण तथा और भी बहुत से मेरे द्वारा मारे हुए शूरवीर योद्धाओं को तू मार। भय मत कर। निःसंदेह तू युद्ध में वैरियों को जीतेगा। इसलिए युद्ध कर ।

संञ्जय उवाच

एतच्छ्रुत्वा वचनं(ङ्) केशवस्य,

कृतां(ञ्)जलिर्वेपमानः(ख्) किरीटी ।

नमस्कृत्वा भूय एवाह कृष्णं(म्),

सगद्गदं(म्) भीतभीतः(फ्) प्रणम्य ॥ 35 ॥

संजय बोले- केशव भगवान के इस वचन को सुनकर मुकुटधारी अर्जुन हाथ जोड़कर काँपते हुए नमस्कार करके, फिर भी अत्यन्त भयभीत होकर प्रणाम करके भगवान श्रीकृष्ण के प्रति गद्‌गद् वाणी से बोले ।

अर्जुन उवाच

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या,

जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।

रक्षां(म्)सि भीतानि दिशो द्रवन्ति,

सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसङ्घाः ॥ 36 ॥

अर्जुन बोले- हे अन्तर्यामिन्! यह योग्य ही है कि आपके नाम, गुण और प्रभाव के कीर्तन से जगत अति हर्षित हो रहा है और अनुराग को भी प्राप्त हो रहा है तथा भयभीत राक्षस लोग दिशाओं में भाग रहे हैं और सब सिद्धगणों के समुदाय नमस्कार कर रहे हैं ।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन्,

गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे।

अनन्त देवेश जगन्निवास,

त्वमक्षरं(म्) सदसत्तत्परं(यँ) यत् ॥ 37 ॥

हे महात्मन्! ब्रह्मा के भी आदिकर्ता और सबसे बड़े आपके लिए वे कैसे नमस्कार न करें ; क्योंकि हे अनन्त! हे देवेश! हे जगन्निवास! जो सत्, असत् और उनसे परे अक्षर अर्थात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म है, वह आप ही हैं ।

त्वमादिदेवः(फ्) पुरुषः(फ्) पुराणस्-

त्वमस्य विश्वस्य परं(न्) निधानम् ।

वेत्तासि वेद्यं(ञ्) च परं(ञ्) च धाम,

त्वया ततं(वँ) विश्वमनन्तरूप ॥ 38 ॥

आप आदिदेव और सनातन पुरुष हैं, आप इन जगत के परम आश्रय और जानने वाले तथा जानने योग्य और परम धाम हैं। हे अनन्तरूप! आपसे यह सब जगत व्याप्त अर्थात् परिपूर्ण हैं ।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः(श्) शशाङ्कः(फ्),

प्रजापतिस्त्वं(म्) प्रपितामहश्च।

नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः(फ्),

पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते ॥ 39 ॥

आप वायु, यमराज, अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, प्रजा के स्वामी ब्रह्मा और ब्रह्मा के भी पिता हैं। आपके लिए हजारों बार नमस्कार! नमस्कार हो!! आपके लिए फिर भी बार-बार नमस्कार! नमस्कार!!

नमः(फ्) पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते,

नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।

अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं(म्)-

सर्वं(म्) समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥ 40 ॥

हे अनन्त सामर्थ्यवाले! आपके लिए आगे से और पीछे से भी नमस्कार! हे सर्वात्मन्! आपके लिए सब ओर से ही नमस्कार हो, क्योंकि अनन्त पराक्रमशाली आप समस्त संसार को व्याप्त किए हुए हैं, इससे आप ही सर्वरूप हैं ।

सखेति मत्वा प्रसभं(यँ) यदुक्तं(म्)-

हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।

अजानता महिमानं(न्) तवेदं(म्)-

मया प्रमादात्प्रणयेन वापि ॥ 41 ॥

आपके इस प्रभाव को न जानते हुए, आप मेरे सखा हैं ऐसा मानकर प्रेम से अथवा प्रमाद से भी मैंने हे कृष्ण!, हे यादव! हे सखे! इस प्रकार कहा। जो कुछ बिना सोचे-समझे हठात् कहा है , उसके लिए आप मुझे क्षमा कर देना।

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि,

विहारशय्यासनभोजनेषु ।

एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं(न्)-

तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ 42 ॥

हे अच्युत! आप जो मेरे द्वारा विनोद के लिए विहार, शय्या, आसन और भोजनादि में अकेले अथवा उन सखाओं के सामने भी अपमानित किए गए हैं- वह सब अपराध अप्रमेयस्वरूप अर्थात अचिन्त्य प्रभाव वाले आपसे मैं क्षमा करवाता हूँ ।

पितासि लोकस्य चराचरस्य,

त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः(ख्) कुतोऽन्यो-

लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥ 43 ॥

आप इस चराचर जगत के पिता और सबसे बड़े गुरु एवं अति पूजनीय हैं। हे अनुपम प्रभाववाले! तीनों लोकों में आपके समान भी दूसरा कोई नहीं हैं, फिर अधिक तो कैसे हो सकता है ।

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं(म्)-

प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः(फ्),

प्रियः(फ्) प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥ 44 ॥

अतएव हे प्रभो! मैं शरीर को भलीभाँति चरणों में निवेदित कर, प्रणाम करके, स्तुति करने योग्य आप ईश्वर को प्रसन्न होने के लिए प्रार्थना करता हूँ। हे देव! पिता जैसे पुत्र के, सखा जैसे सखा के और पति जैसे प्रियतमा पत्नी के अपराध सहन करते हैं- वैसे ही आप भी मेरे अपराध को सहन करने योग्य हैं।

अदृष्टपूर्वं(म्) हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा,

भयेन च प्रव्यथितं(म्) मनो मे।

तदेव मे दर्शय देवरूपं(म्)-

प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ 45 ॥

मैं पहले न देखे हुए आपके इस आश्चर्यमय रूप को देखकर हर्षित हो रहा हूँ और मेरा मन भय से अति व्याकुल भी हो रहा है, इसलिए आप उस अपने चतुर्भुज विष्णु रूप को ही मुझे दिखलाइए। हे देवेश! हे जगन्निवास! प्रसन्न होइए ।

किरीटिनं(ङ्) गदिनं(ञ्) चक्रहस्त-

मिच्छामि त्वां(न्) द्रष्टुमहं(न्) तथैव।

तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन,

सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥ 46 ॥

मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किए हुए तथा गदा और चक्र हाथ में लिए हुए देखना चाहता हूँ। इसलिए हे विश्वस्वरूप! हे सहस्रबाहो! आप उसी चतुर्भुज रूप से प्रकट होइए ।

श्रीभगवानुवाच

मया प्रसन्नेन तवार्जुनेदं(म्)-

रूपं(म्) परं(न्) दर्शितमात्मयोगात् ।

तेजोमयं(वँ) विश्वमनन्तमाद्यं(यँ)-

यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ 47 ॥

श्री भगवान बोले- हे अर्जुन! अनुग्रहपूर्वक मैंने अपनी योगशक्ति के प्रभाव से यह मेरे परम तेजोमय, सबका आदि और सीमारहित विराट् रूप तुझको दिखाया है, जिसे तेरे अतिरिक्त दूसरे किसी ने पहले नहीं देखा था ।

न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्-

न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।

एवं(म्)रूपः(श्) शक्य अहं(न्) नृलोके,

द्रष्टुं(न्) त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ 48 ॥

हे अर्जुन! मनुष्य लोक में इस प्रकार विश्व रूप वाला मैं न वेद और यज्ञों के अध्ययन से, न दान से, न क्रियाओं से और न उग्र तपों से ही तेरे अतिरिक्त दूसरे द्वारा देखा जा सकता हूँ ।

मा ते व्यथा मा च विमूढभावो-

दृष्ट्वा रूपं(ङ्) घोरमीदृङ्ममेदम्।

व्यपेतभीः(फ्) प्रीतमनाः(फ्) पुनस्त्वं(न्)-

तदेव मे रूपमिदं(म्) प्रपश्य ॥ 49 ॥

मेरे इस प्रकार के इस विकराल रूप को देखकर तुझको व्याकुलता नहीं होनी चाहिए और मूढ़भाव भी नहीं होना चाहिए। तू भयरहित और प्रीतियुक्त मनवाला होकर उसी मेरे इस शंख-चक्र-गदा-पद्मयुक्त चतुर्भुज रूप को फिर देख ।

सञ्जय उवाच

इत्यर्जुनं(वँ) वासुदेवस्तथोक्त्वा,

स्वकं(म्) रूपं(न्) दर्शयामास भूयः ।

आश्वासयामास च भीतमेनं(म्)-

भूत्वा पुनः(स्) सौम्यवपुर्महात्मा ॥ 50 ॥

संजय बोले- वासुदेव भगवान ने अर्जुन के प्रति इस प्रकार कहकर फिर वैसे ही अपने चतुर्भुज रूप को दिखाया और फिर महात्मा श्रीकृष्ण ने सौम्यमूर्ति होकर इस भयभीत अर्जुन को धीरज दिया।

अर्जुन उवाच

दृष्ट्वेदं(म्) मानुषं(म्) रूपं(न्), तव सौम्यं(ञ्) जनार्दन।

इदानीमस्मि सं(वँ)वृत्तः(स्), सचेताः(फ्) प्रकृतिं(ङ्) गतः ॥ 51 ॥

अर्जुन बोले- हे जनार्दन! आपके इस अतिशांत मनुष्य रूप को देखकर अब मैं स्थिरचित्त हो गया हूँ और अपनी स्वाभाविक स्थिति को प्राप्त हो गया हूँ ।

श्री भगवान उवाच

सुदुर्दर्शमिदं(म्) रूपं(न्), दृष्टवानसि यन्मम।

देवा अप्यस्य रूपस्य, नित्यं(न्) दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ 52 ॥

श्री भगवान बोले- मेरा जो चतुर्भज रूप तुमने देखा है, वह सुदुर्दर्श है अर्थात् इसके दर्शन बड़े ही दुर्लभ हैं। देवता भी सदा इस रूप के दर्शन की आकांक्षा करते रहते हैं ।

नाहं(वँ) वेदैर्न तपसा, न दानेन न चेज्यया।

शक्य एवं(वँ)विधो द्रष्टुं(न्), दृष्टवानसि मां(यँ) यथा ॥ 53 ॥

जिस प्रकार तुमने मुझको देखा है- इस प्रकार चतुर्भुज रूप वाला मैं न वेदों से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से ही देखा जा सकता हूँ ।

भक्त्या त्वनन्यया शक्य, अहमेवं(वँ)विधोऽर्जुन ।

ज्ञातुं(न्) द्रष्टुं(ञ्) च तत्वेन, प्रवेष्टुं(ञ्) च परन्तप ॥ 54 ॥

परन्तु हे परंतप अर्जुन! अनन्य भक्ति के द्वारा इस प्रकार चतुर्भुज रूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखने के लिए, तत्व से जानने के लिए तथा प्रवेश करने के लिए अर्थात् एकीभाव से प्राप्त होने के लिए भी शक्य हूँ।

मत्कर्मकृन्मत्परमो, मद्भक्तः(स्) सङ्गवर्जितः ।

निर्वैरः(स्) सर्वभूतेषु, यः(स्) स मामेति पाण्डव ॥ 55 ॥

हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे ही लिए सम्पूर्ण कर्तव्य कर्मों को करने वाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियों में वैरभाव से रहित है, वह अनन्यभक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है ।

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतापर्वणि

श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां(यँ) योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसं(वँ)वादे

विश्वरूपदर्शनयोगो नामैकादशोऽध्यायः ॥

ॐ पूर्णमदः(फ्) पूर्णमिदं(म्)पूर्णात्पूर्णमुदच्यते

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शांतिः(श्) शांतिः(श्) शांतिः ॥

वह सच्चिदानंदघन परब्रह्म सभी प्रकार से सदा सर्वदा परिपूर्ण है। यह जगत भी उस परमात्मा से पूर्ण ही है, क्योंकि यह पूर्ण उस पूर्ण पुरुषोत्तम से ही उत्पन्न हुआ है। इस प्रकार परब्रह्म की पूर्णता से जगत पूर्ण होने पर भी वह परब्रह्म परिपूर्ण है। उस पूर्ण में से पूर्ण को निकाल देने पर भी वह पूर्ण ही शेष रहता है।